SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

गाँधी विचार धारा के मूल तत्वः एक अध्ययन

अल्का शर्मा, (Ph.D.), प्राचार्या,
माडर्न इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल सांइसेस, इंदौर, मध्यप्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
अल्का शर्मा, (Ph.D.), प्राचार्या,
माडर्न इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल सांइसेस, इंदौर, मध्यप्रदेश, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 18/09/2021
Revised on : -----
Accepted on : 25/09/2021
Plagiarism : 00% on 18/09/2021

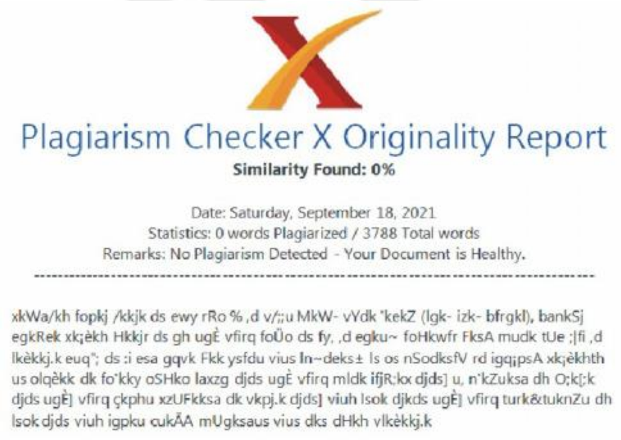
Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 0%

Date: Saturday, September 18, 2021
Statistics: 0 words Plagiarized / 3788 Total words
Remarks: No Plagiarism Detected - Your Document is Healthy.

xkWa/kh fopkj /kkjk ds ewy rRo % ,d v/;;u MkW- vYdk 'kekZ (lgk- izk- bfrgkl), bankSj egkRek xk;èkh Hkkjr ds gh ugÈ vfirq foÜo ds fy, ,d egku~ foHkwfr FksA mudk tUe ;|fi ,d lkèkkj.k euq"; ds :i esa gqvk Fkk ysfdu vius ln~deks± ls os nSodksfV rd igq¡psA xk;èkhth us olqèkk dk fo'kky oSHko laxzg djds ugÈ vfirq mldk ifjR;kx djds] u, n'kZuksa dh O;k[;k djds ugÈ] vfirq çkphu xzUFkksa dk vkpj.k djds] viuh lsok djkds ugÈ] vfirq turk&tuknZu dh lsok djds viuh igpku cukÃA mUgksaus vius dks dHkh vlkèkkj.k

शोध सार

गाँधी जी ने भारतीय संस्कृति के गौरवपूर्ण श्रेष्ठ आदर्शों को व्यवहारिक रूप देकर शामिल किया, वहीं मानव मूल्यों को स्थापित करते हुए ऐसे अहिंसक समाज की स्थापना करने का बीड़ा उठाया, जहाँ न धर्म भेद हो, न जाति भेद और न ही वर्ण भेद हो। जहाँ न कोई ऊँचा हो और न कोई नीचा, न कोई अमीर हो और न कोई गरीब, न कोई शासक हो और न कोई शासित। ऐसा समाज स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि दूसरों की सेवा के उद्देश्य से बने। स्त्री–पुरुष को समान अधिकार हों और प्रगति करने के लिए हर एक को समान अवसर मिलें। सबको .. काम मिले और मेहनत का उचित पारिश्रमिक भी। ऐसे समाज में कानून कायदे का बंधन कम से कम हो। धन को कोई महत्व न दिया जाये। झूठ, धोखाधड़ी, चोरी, रिश्वत और कालाबाजारी न हो। आज भारत स्वतंत्र अवश्य है लेकिन गाँधीजी के सपनों का भारत अस्तित्व में नहीं है। अतः गाँधीजी के विचार एवं उसके मूल तत्व आज भी उपयोगी और अनुकरणीय हैं।

मुख्य शब्द

संस्कृति, स्पृष्यता, गाँधी जी, विचारधारा, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, निर्ममता, अपरिग्रह.

गाँधी जी की विचारधारा और उसमें निहित मूलतत्व जिस पर पूरा गाँधी दर्शन अवलम्बित है, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अस्वाद–व्रत, अपरिग्रह, निर्भयता, शारीरिक श्रम, सर्व धर्म समभाव, स्वदेशी और अस्पृश्यता निवारण। गाँधी विचारधारा के इन मूल तत्वों का अध्ययन, अवलोकन इस शोध पत्र का उद्देश्य है। मार्च 1936 ई. में गाँधीजी ने 'गाँधी सेवासंघ के सदस्यों के सामने स्पष्ट रूप से कहा था कि गाँधीवाद नाम की कोई वस्तु है ही नहीं और न मैं अपने पीछे कोई सम्प्रदाय छोड़ना चाहता हूँ। मेरा यह दावा भी नहीं है कि मैंने कोई नए तत्व या नए सिद्धान्त

का अविष्कार किया है। मैंने तो केवल जो शाश्वत सत्य है. उसे अपने नित्य के जीवन और प्रश्नों पर अपने ढंग से उतारने का प्रयास किया है। मुझे दुनिया को कोई नई चीज नहीं सिखानी है। सत्य और अहिंसा अनादि काल से चले आ रहे हैं। मेरा सारा तत्व ज्ञान और मेरे विचार को 'गाँधीवाद' न कहिए, इसमें वाद नाम की कोई वस्तु नहीं है।।[1] गाँधीजी का उपरोक्त कथन यह प्रमाणित करता है कि वे वाद के झगड़े से मुक्त रहना चाहते थे। वे कभी किसी के गुरू भी नहीं बनना चाहते थे। वे हमेशा कहते थे कि मैं स्वयं गुरू की खोज में हूँ। इतना स्पष्टीकरण होने पर भी गाँधीदर्शन के मर्मज्ञों ने उनकी विचारधारा को 'वाद' में समझने का प्रयत्न किया है। वस्तुतः गाँधीजी ने जिन विचारों को अभिव्यक्ति दी है अथवा गाँधी विचार पद्धति का व्यापक नाम ही गाँधीवाद है जिनका उन्होंने समर्थन तथा प्रयोग किया है। महात्मा गाँधी का चिंतन समग्रता लिए हुए था। उनके मन—मस्तिष्क में देश की स्वतन्त्रता के साथ—साथ देश के नवनिर्माण की परिकल्पना भी विद्यमान थी। उन्होंने भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को स्पर्श किया था। धर्म, शिक्षा, राजनीति, अर्थनीति, सार्वजनिक सदाचरण, समाज, शासन के संगठन जैसे हर क्षेत्र में उनके अपने मौलिक विचार थे, उन पर गहन चिन्तन था जिनका प्रतिपादन उन्होंने अपनी दैनिक साधना के मध्य से गुजरते हुए किया। गाँधीवाद का आधार तर्क नहीं, स्वानुभूति है और इस विचारधारा का प्रत्येक पक्ष आत्मशक्ति को लेकर चलता है इसी कारण उसमें एक प्रकार की आध्यात्मिकता और विचार—स्वातन्त्र्य है। गाँधीजी का समग्र चिन्तन व्यक्ति तथा समाज के हित का वह दर्शन और विज्ञान है जिसके पुरस्कर्ता और प्रयोगकर्ता गाँधीजी हैं। यह उनके जीवन का क्रियात्मक विज्ञान है जो प्रतिक्षण परीक्षण, परिष्करण, समन्वय और साधना से पुष्ट है। सत्य की महिमारू गाँधी विचारधारा का मूलमंत्र सत्य है। इस सम्बन्ध में गाँधीजी का विचार था कि 'सत्य' 'सत्' से बना है जिसका अर्थ हैः 'अस्ति' अर्थात् अस्तित्व। सत्य के बिना दूसरी किसी चीज की हस्ती नहीं है। परमेश्वर का सच्चा नाम ही सत्य है। उसे ही वे आत्म साक्षात्कार अथवा मोक्ष मानते हैं परन्तु इस सर्वव्यापी सत्य की अनुभूति तथा साक्षात्कार के लिए एक विशेष मनःस्थिति, निरन्तर तैयारी तथा पवित्र अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता है। इस सर्वव्यापी सत्य के साक्षात्कार के लिए अहिंसा की साधना अनिवार्य है क्योंकि अहिंसा के बिना सत्य—दर्शन असम्भव है। सत्य की महत्ता प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैंः अहिंसा को मैं जितना पहचान सका हूँ उसकी निस्बत मैं सत्य को अधिक पहचानता हूँ ऐसा मेरा ख्याल है और यदि मैं सत्य को छोड़ दूं तो अहिंसा की बड़ी उलझनें, मैं कभी नहीं सुलझा सकूँगा। अर्थात् महात्मा गाँधी के निकट 'सत्य' सर्वोच्च कर्म है यही कारण है कि उन्होंने 'सत्य' को 'अहिंसा' से भी ऊँचा स्थान दिया है। वे स्वयं कहते हैं 'सत्य' में सब बातों का समावेश हो जाता है। 'सत्य' में प्रेम मिलता है। मृदुता मिलती है। सत्य सदा स्वावलम्बी होता है और बल तो उसके स्वभाव में होता ही है। वास्तव में गाँधी विचारधारा 'सत्य' की साधना है। सत्य ही उसका लक्ष्य है तथा सत्य की पूजा एवं आराधना के लिए गाँधीजी संसार के समस्त दुखों का आलिंगन करने को तैयार रहे। गाँधीजी को 'सत्यमेव जयते' के सिद्धान्त पर पूरा विश्वास था। उनका यह अटल विश्वास था कि धोखा देने वाला अंत में अवश्य ही धोखा खायेगा। इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने कई बार अकाट्य तर्क दिए। गाँधीजी के अनुसार सत्यवचन का अर्थ है वह बोला जाए जो शुभ और सुन्दर हो। सत्य वचन का अर्थ यह नहीं कि हम वाचालता, अश्लीलता और निरर्थकता के शिकार हो जाएँ। हम जो भी बोलें उसमें दूसरों का हित और लाभ देखकर बोलना चाहिए अर्थात् जो भी बोलें प्रेम से बोलें। मनु का नीति वचन भी यही संदेश देता हैः 'सत्यम् ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् नए ब्रूयात् सत्यम् प्रियं'। सत्य की आधारभूत श्रेष्ठता के प्रति आंतरिक आस्था गाँधीजी के सम्पूर्ण जीवन में प्रकट होती है चाहे उनकी बातचीत हो या व्याख्यान, लेख हो या पत्रकारिता, हर जगह उन्होंने अतिशयोक्ति, असहिष्णुता, कठोरता और सस्ती सफलता के लिए अनुचित उद्विग्नता को अपने से दूर ही रखा और हर जगह मृदु, प्रभावकारी सत्यवादिता का मन, कर्म और वचन से आदर्श प्रस्तुत किया। अहिंसा की शक्ति, गाँधी विचारधारा का मूल आधार सत्य और अहिंसा है। उन्होंने अहिंसा के परम्परागत तत्वदर्शन का नव—संस्करण किया है। गाँधीजी 'सत्य' की भाँति अहिंसा को भी सर्वशक्तिमान और असीम मानते थे तथा उसे ईश्वर का समानार्थक स्वीकार करते थे। उनकी दृष्टि में व्यक्तिगत रूप से सत्य और अहिंसा की साधना के द्वारा मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति कर उत्कर्ष प्राप्त कर सकता है और सामूहिक रूप से इन गुणों की साधना द्वारा मनुष्य समाज में रामराज्य की स्थापना हो सकती है। सत्य रूपी सूर्य का सम्पूर्ण दर्शन सम्पूर्ण अहिंसा के बिना असम्भव है।[10] गाँधीजी की अहिंसा की परिभाषा उपनिषद्, मनुस्मृति अथवा जैन दार्शनिकों की व्याख्या से भिन्न थी। उपनिषद् और

मनुस्मृति के अनुसार–अहिंसा का अर्थ किसी प्राणी को कष्ट नहीं पहुँचाना है अथवा किसी के प्राण नहीं लेना है, जबकि जैन धर्म में सभी परिस्थितियों में सभी प्राणियों के लिए मनसा, वाचा, कर्मणा में हिंसा का वर्जन है। मनु ने अहिंसा के सिद्धान्त को लचीला बनाते हुए यज्ञ और भोजन के लिए पशु–बलि तथा आत्मरक्षा के लिए मनुष्य को मारने की अनुमति दी है। गाँधीजी की अहिंसा की परिभाषा उपरोक्त दोनों व्याख्याओं के बीच की है। वे न तो जैन धर्म के अतिवाद को स्वीकार करते हैं और न मनु द्वारा दी गई हिंसा की छूट को। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि पूर्ण अहिंसा में विश्वास करने वाले व्यक्ति के सामने व्यवहारिक जीवन भी एक धर्म संकट है। ज्ञात या अज्ञात रूप में हिंसा किए बिना मनुष्य एक क्षण भी नहीं जी सकता। चाहे वह हमारा भोजन हो या जल ग्रहण या फिर हमारा चलना और घूमना। इन सभी में कुछ न कुछ हिंसा होती ही है। तात्पर्य यह है कि सच्ची अहिंसा का अर्थ केवल जीव हिंसा या बाह्य रूप से किसी को शारीरिक कष्ट न देने से नहीं है। यह तो हमारे अन्तर्मन की वस्तु है, अतः हमें अपने मन–मस्तिष्क से क्रोध, घृणा और प्रतिहिंसा की भावना का परित्याग करना होगा। वही सच्ची अहिंसा है। उनकी अहिंसा में कायरता और प्रवंचना का कोई स्थान नहीं था। उन्होंने अहिंसा की व्यवहारिकता को ध्यान में रखते हुए उसकी भावात्मक व्याख्या की है। वे अहिंसा को 'प्रेम' भी कहते हैं। उन्होंने अपने आचरण और उपदेशों के द्वारा अहिंसा की कल्पना में बुद्ध की मैत्री और करुणा तथा ईसामसीह की शत्रुओं से प्यार, बुराई के बदले भलाई घृणा के बदले प्रेम करने की भावनाओं का सम्मिश्रण किया। भावात्मक रूप में अहिंसा, गीता और अन्य भारतीय शास्त्रों में वर्णित 'आत्मवत् सर्व भूतेषू के सिद्धान्त पर आधारित है।[11] अहिंसा एक नकारात्मक अथवा निषेधात्मक, केवल सहन करने की व्यवस्था का जीवन दर्शन नहीं है विधेयात्मक रूप में इसकी शक्ति और भी विलक्षण है। क्रियात्मक रूप में अहिंसा अधिकतम जीवधारियों के प्रति अधिकतम प्रेम की भावना का जीवन दर्शन है। भारतीय हिन्दू धर्म में अहिंसा ऋषियों का सिद्धान्त माना गया है। यह उनकी साधना की वस्तु समझी जाती थी। सामुदायिक तथा सामाजिक जीवन में अहिंसा का प्रयोग और प्रचार न था। गाँधीजी ने अपने जीवन की प्रयोगशाला में सत्य और अहिंसा को शोधित कर प्रेम और सेवा का निखरा रूप प्राप्त किया और इसे शाश्वत सिद्धान्त बनाकर सामुदायिक तथा सामाजिक उपयोग की एक गतिशील प्रेरणाशक्ति बना दिया। गाँधीजी का उददेश्य भारत को पश्चिमी सभ्यता के पंजे से छुड़ाकर सत्य, अहिंसा और धर्म के मार्ग पर ले जाना तथा देश में रामराज्य की स्थापना करके सुख–शांति की व्यवस्था करना था।[12] उनकी इस कार्यपद्धति के केन्द्र में अहिंसा सूर्य की तरह प्रतिष्ठित रही। इसी अहिंसा के सिद्धान्त को लेकर उन्होंने नए समाज और नए विश्व की रचना का प्रयास किया जहाँ अहम् के सुखवाद और ऐहिक भोगों की लिप्सा के स्थान पर दूसरों के प्रति अपने कर्तव्यों के पालन और प्राणीमात्र के प्रति प्रेममय जीवन के चरम उत्कर्ष तथा जगत का कल्याण और मानववाद की प्रतिष्ठा स्थापित हो। उनका निष्कपट मन सदैव सर्वे सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयः की आकांक्षा करता था।

ब्रह्मचर्य

गाँधीजी विचारधारा में ब्रह्मचर्य का महत्वपूर्ण स्थान है। इस व्रत के पालन पर गाँधीजी ने बहुत बल दिया। जिस प्रकार अहिंसा के बिना सत्य की सिद्धि सम्भव नहीं, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य के बिना सत्य और अहिंसा, दोनों की सिद्धि असम्भव है।[13] ब्रह्मचर्य का सूक्ष्म अर्थ मन को ब्रह्म में नियोजित करने की चेष्टा है, इसके लिए मन, वचन और शरीर की पवित्रता आवश्यक है। ब्रह्मचर्य का स्थूल अर्थ मन, वचन और शरीर से पवित्र रहना और अपनी शक्तियों को लक्ष्य (सत्य साधना या ब्रह्म साधना) में केन्द्रित कर देना है।[14] गाँधीजी के अनुसार मन, वचन और कर्म से इन्द्रियों का दमन ही ब्रह्मचर्य है।[15] गाँधीजी संयत वैवाहिक जीवन को ब्रह्मचर्य का एक अंग मानते थे। उन्होंने सन्यासी जीवन को ब्रह्मचर्य के अर्थ में शामिल नहीं किया। वे विवाहित जीवन की आवश्यकता और सार्थकता को महत्व देते हैं। उनकी दृष्टि में जो स्त्री–पुरुष ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का प्रयत्न करते हैं उन्हें किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। संतानोत्पत्ति के निमित्त की गई यौन क्रिया सुन्दर और श्रेष्ठ है, उसमें लज्जा की कोई बात नहीं।[16] गाँधीजी हिन्दू स्मृतियों के इस मत से पूर्णतः सहमत हैं कि उन विवाहित लोगों को जो उस मूलभूत नियम के अनुसार आचरण करते हैं, ब्रह्मचार मानना चाहिए।[17]

अस्तेय व्रत

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वालों के लिए अन्य व्रतों का पालन अनिवार्य हो जाता है। अस्तेय–व्रत का संक्षिप्त अर्थ है चोरी न करना किन्तु इसका व्यापक अर्थ है: अपनी मानी जाने वाली वस्तु किन्तु अपने को जिसकी आवश्यकता नहीं है, ऐसी वस्तु का उपयोग न करना भी चोरी है। अस्तेय व्रत पालक के लिए यह जरूरी है कि वह अपनी आवश्यकताओं को कम से कम कर दे।

अस्वाद

अस्वाद का अर्थ है स्वाद न लेना अर्थात् किसी भी वस्तु को स्वाद के लिए लेना व्रत को तोड़ना है।[18] गाँधीजी ने चरित्र की दृढ़ता के लिए अस्वाद व्रत के पालन का संदेश दिया उनका कहना था कि भोजन, क्षुधा–निवारण के लिए है न कि रस तृप्ति के लिए।

अपरिग्रह

किसी चीज की अनिवार्य आवश्यकता न होने पर भी भविष्य के लिए संचय करके रखना परिग्रह है। इस वृत्ति का अभाव अपरिग्रह है। परिग्रह आध्यात्मिक दृष्टि से ब्रह्म या परमेश्वर में विश्वास का अभाव या शिथिलता का सूचक है और व्यवहारिक दृष्टि से इसके कारण निजत्व और परत्व के भाव का जन्म होता है। इसी प्रकार अपरिग्रह आध्यात्मिक दृष्टि से परमेश्वर या लक्ष्य में दृढ़ विश्वास और तदनुकूल आचरण का सूचक है। पूर्ण अपरिग्रह पूर्ण प्रेम का निष्कर्ष है और इसका अर्थ है: सम्पूर्ण त्याग।[19] जब सत्याग्रही अहिंसक व्रतों को अपनाता है तो शरीर में उसकी आसक्ति घटती है और वह अपनी आवश्यकताओं और परिग्रहों को घटाने में समर्थ हो जाता है। गाँधीजी का इस पर दृढ़ विश्वास था कि यदि हम इस व्रत की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील हों तो संसार में समता की स्थापना में किसी भी दूसरी पद्धति की अपेक्षा अधिक आगे बढ़ सकेंगे।[20] गाँधीजी ने समाज से शोषण की बुराई को दूर करने के लिए तथा सामाजिक समानता स्थापित करने के लिए अपरिग्रह पर जोर दिया।

निर्भयता

गाँधी चिन्तन में अभय का महत्वपूर्ण स्थान है। जो मनुष्य अपने मन के विकारों के अलावा दूसरी आपत्तियों से डरता है, वह अहिंसा का पालन नहीं कर सकता।[21] गाँधीजी ने व्यक्ति के चरित्र पर विशेष बल दिया। उन्होंने कहा कि–जिसमें चरित्र बल होगा उसमें ही अहिंसा, सत्य और निर्भयता के गुण होंगे। जब तक मनुष्य मृत्यु का भय नहीं छोड़ देता तब तक अहिंसा का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। उनके विचार में कायर आदमी कभी अहिंसक हो ही नहीं सकता। कायरता मनुष्य की सबसे निकृष्ट बुराई है।[22] 26 नवम्बर 1944 को गाँधीजी ने अपनी डायरी में निर्भयता के सम्बन्ध में लिखा–अभय के मायने हैं सभी प्रकार के भय, मौत का भय, धन–दौलत लुट जाने का भय, शस्त्र प्रहार का भय आदि से मुक्ति। इसीलिए वे स्पष्ट कहते हैं कि: 'कायर व्यक्ति कभी नैतिकता का पालन नहीं कर सकता। सदाचरण और सद्गुण में अभय आवश्यक है। इसके बिना सत्य का अन्वेषण और प्रेम की साधना नहीं हो सकती।[23] नि:संदेह सत्य तथा अहिंसा के विकास लिए अभय अनिवार्य है।

शारीरिक श्रम अथवा स्वावलम्बन

गाँधीजी ने शारीरिक श्रम को विशेष महत्व दिया है। उनके विचार में जो मनुष्य अस्तेय और अपरिग्रह व्रत का पालन करता है, वह स्वावलम्बी होता है। उनके अनुसार: श्रमजीवी को ही सच्ची भूख लगती है। वह जो भी खाता है, स्वाद से खाता है और थककर सोता है। चूंकि वह मेहनत करके रोटी कमाता–खाता है इसलिए उसमें पूरा आत्मविश्वास और आत्मसंतोष भी होता है।[24] गाँधीजी तो यहाँ तक चाहते हैं कि प्रत्येक परिवार को स्वयं अपना भंगी बनना चाहिए। इस काम को हलका मानना उचित नहीं है। शरीर–श्रम आदर्श के प्रचारक टॉलस्टॉय तथा रस्किन थे। गाँधीजी इस व्रत के लिए उनके ऋणी हैं। इस व्रत के सम्बन्ध में गाँधीजी कहते हैं: जो रोटी खाता है उसे मजदूरी करनी चाहिए। बिना मेहनत किए रोटी खाना एक प्रकार की चोरी है और एक भीषण नैतिक अपराध भी। शारीरिक श्रम में वे बौद्धिक श्रम को सम्मिलित नहीं करते, क्योंकि शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति

शरीर द्वारा ही होना चाहिए, मानसिक और बौद्धिक श्रम आत्मा के लिए है। वह अपनी स्वयं की तुष्टि है।[25] किसी भी मनुष्य को शरीर–श्रम के बंधन से मुक्त नहीं होना चाहिए। यह श्रम बौद्धिक उत्पादन के गुण की अभिवृद्धि में भी सहायक होगा।[26] साथ ही यदि सब लोग अपने ही परिश्रम की कमाई खायें तो दुनिया में अन्न की कमी नहीं रहेगी और सबको पर्याप्त अवकाश भी मिलेगा। तब न तो किसी को जनसंख्या वृद्धि की शिकायत रहेगी और न कोई बीमारी होगी और न ही किसी मनुष्य को कष्ट या क्लेश होगा। उस अवस्था में न कोई राव होगा न कोई रंक, न कोई ऊँचा होगा और न कोई नीचा न कोई स्पृश्य होगा और न ही कोई अस्पृश्य। उनके विचार में भले ही यह एक अलभ्य आदर्श है परन्तु हमें अपने प्रयत्न जारी रखने होंगे तब हम उस आदर्श के बहुत कुछ निकट तो पहुँच ही जायेंगें। गाँधीजी शारीरिक श्रम के धर्म को स्वेच्छापूर्वक अपनाने के पक्षधर थे।[27]

स्वदेशी की गरिमा

जहाँ शारीरिक श्रम हैं वहाँ स्वदेशी धर्म का अस्तित्व है। इस सम्बन्ध में गाँधीजी के विचार स्पष्ट हैं कि स्वदेशी व्रत निरे–स्वदेशाभिमान के विचार से उत्पन्न नहीं होता। यह समाज के प्रति अपने धर्म पर विचार करने से उत्पन्न होता है। स्वदेशी व्रतधारी अपने व्रत का पालन करने के लिए अपनी ही बनी हुई अर्थात् अपने देश की बनी हुई वस्तुओं का उपयोग करता है। उनके अनुसार स्वेदशी धार्मिक अनुशासन है जिसका पालन व्यक्ति को उससे होने वाले शारीरिक कष्ट की बिल्कुल उपेक्षा करके करना चाहिए। स्वेदशी हृदय की भावना है जिसमें अपने देश के प्रति सेवा की भावना निहित है।[28] गाँधीजी ने स्वदेशी–व्रत का मंत्र मनुष्य को स्वाश्रयी बनाने के लिए दिया। यह व्रत जहाँ अपने देश की शोषण से रक्षा करता है वहीं करोडों व्यक्तियों की गरीबी, बेकारी, अर्धबेकारी की भयंकर समस्या का समाधान भी करता है। स्वदेशी धर्म में किसी दूसरे से कोई द्वेष नहीं है बल्कि यह प्रेम और अहिंसा से उत्पन्न विस्तृत धर्म है। चर्खा और खादी का अधिकाधिक प्रयोग का संदेश इस व्रत पर आधारित है।

सर्वधर्म समभाव

महात्मा गाँधी ने अपनी विचारधारा में सर्व–धर्म समन्वय का विराट् आयोजन किया है। सन् 1934 में उन्होंने लिखा था: मैं संसार में सब महान धर्मों के मूलभूत सत्यों में विश्वास करता हूँ। मूल में वे सब एक हैं।[29] उनके अनुसार मनुष्य को उर्ध्वगामी बनाने की प्रबल इच्छा ही धर्म का प्रेरक हेतु है। वे चाहते हैं कि प्रत्येक सत्याग्रही प्रत्येक धर्म का आदर करे, उसका अध्ययन करे। यह अध्ययन सब धर्मों की एकता समझने में और सर्वधर्मी समानत्व की भावना विकसित करने में सहायक होगा। सर्वधर्म का यह अर्थ नहीं है कि हम अधर्म के प्रति सहिष्णु हों या समानत्व धर्मों के दोषों को न देखें।[30] गाँधीजी ने 28 दिसम्बर 1936 ई. को 'हरिजन' में लिखा है–'धर्म एक अत्यन्त वैयक्तिक वस्तु है। हमें दूसरों के जीवन की श्रेष्ठ बातों का अधिकाधिक लाभ लेते हुए अपने आदर्शों के अनुसार जीवन यापन करने का प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार हम ईश्वर प्राप्ति की आध्यात्मिक साधना को भी समृद्ध करेगें। इसी आधार पर उन्होंने सभी धर्मों में भ्रातृत्व की कल्पना की थी। उनके विचार में सभी धर्म सही और सच्चे हैं। सभी धर्मों में थोडी बहुत बुराइयाँ हैं और सभी धर्म हिन्दू धर्म के समान ही प्रिय हैं।[31] यदि गाँधीजी की इस भावना को स्वीकार कर लिया जाय तो धर्म परिवर्तन का प्रश्न ही नहीं रहेगा और इस तरह के समभाव से हम अपने–अपने धर्म को अधिक प्रभावशाली, विस्तृत और स्थायी भी बना सकते हैं।

अस्पृश्यता का विरोध

गाँधीजी की दृष्टि में अस्पृश्यता निवारण करना एक व्रत के समान है। यह व्रत सब जीवों की आध्यात्मिक एकता के सिद्धान्त का निष्कर्ष है। गाँधीजी के अनुसार हम मनुष्य–मनुष्य और विभिन्न जीवों के बीच का भेद मिटा दें और जीवमात्र को अपने समान मानकर उनकी सेवा करें।[32] उनके विचार में अस्पृश्यता का मूल उद्‌गम धर्म नहीं है। उच्चता के खोटे अहंकार ने ही अस्पृश्यता को जन्म दिया है। अपने से दुर्बल को हम सदा पैरों तले दबाते रहे हैं, इसी मनोवृत्ति से अस्पृश्यता उत्पन्न हुई है।.... ...अछूतापन जैसा आज हम मानते हैं वह न पूर्व कर्म फल है, न ईश्वर कृत हैं आज का अछूतापन मनुष्यकृत है, सवर्ण हिन्दू कृत है। गाँधीजी ने हिन्दुओं को आगाह करते हुए कहा कि यदि समय रहते अस्पृश्यता समाप्त नहीं की गई तो हिन्दू समाज और हिन्दू धर्म का अस्तित्व ही संकट में पड़

जायेगा।[33] गाँधीजी ने इस व्रत के आधार पर रचनात्मक कार्यक्रम के अन्तर्गत हरिजनोद्धार का कार्य किया। निःसंदेह गाँधी विचारधारा के मूल तत्वों का समावेश गाँधीजी की विभिन्न विचारधाराओं में तथा उनके क्रियान्वयन में दिखाई देता है। गाँधी विचारधारा में समाहित मूल तत्वों के प्रभाव को उद्घाटित करते हुए उनकी विचारधारा के मर्मज्ञ तथा इतिहासविद पट्टाभिसीतारमैया ने लिखाः गाँधीजी की शिक्षा से नशेबाज ने नशा छोड़ दिया है। उनके आशीष से वैश्यागृह की वैश्या लक्ष्मी बन गई।.... उनकी जिह्वा के एक अक्षर ने दलितों को उबार लिया। उनकी एक साँस ने नारी को, जो घरेलू चल सम्पत्ति समझी जाती थी, समाज के विवेकमय उत्तरदायी सदस्य के रूप में परिवर्तित कर दिया। पुरानी खादी नए फैशन के रूप् में सामने आई। इस तरह गाँधीजी का संदेश चहुंओर फैलकर अपना प्रभाव दिखाने लगा।

निष्कर्ष

आधुनिक भारतीय इतिहास में गाँधीजी की देन अपूर्व और अप्रतिम है। उन्होंने अपने विचारों के मूलतत्वों में भारतीय संस्कृति के गौरवपूर्ण श्रेष्ठ आदर्शों को व्यवहारिक रूप देकर शामिल किया वहीं मानव मूल्यों को स्थापित करते हुए ऐसे अहिंसक समाज की स्थापना करने का बीड़ा उठाया जहाँ न धर्म भेद हो न जाति भेद और न ही वर्ण भेद हो। जहाँ न कोई ऊँचा हो और न कोई नीचा। न कोई अमीर हो और न कोई गरीब। न कोई शासक हो और न कोई शासित। ऐसा समाज स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि दूसरों की सेवा के उद्देश्य से बने। स्त्री–पुरुष को समान अधिकार हों और प्रगति करने के लिए हर एक को समान अवसर मिलें। सबको .. काम मिले और मेहनत का उचित पारिश्रमिक भी। ऐसे समाज में कानून कायदे का बंधन कम से कम हो। धन को कोई महत्व न दिया जाये। झूठ, धोखाधड़ी, चोरी, रिश्वत और कालाबाजारी न हो। आज भारत स्वतंत्र अवश्य है लेकिन गाँधीजी के सपनों का भारत अस्तित्व में नहीं है। अतः गाँधीजी के विचार एवं उसके मूल तत्व आज भी उपयोगी और अनुकरणीय हैं।

संदर्भ सूची

1. हरिजन बन्धु, 26 मार्च 1936
2. *हिन्दी साहित्य कोश,* प्रथम संस्करण, पृ. 256
3. गाँधी साहित्य, भाग–5, धर्मनीति, पृ. 118 एवं दत्त धीरेन्द्र मोहन, *महात्मा गाँधी का दर्शन,* 1981, पृ. 55
4. गाँधी, मो. क., *आत्मकथा,* पृ. 506, 507, 1984
5. यंग इण्डिया तथा हिन्दी नव जीवन, 14.8.1924
6. Selections from Gandhi P- 14-38
7. दत्त, धीरेन्द्र मोहन, *पूर्वोक्त,* पृ. 72, 1981
8. धावन, गोपीनाथ, *सर्वोदय तत्व दर्शन,* पृ. 33
9. हरिजन 1.5.1937
10. गाँधी, मो. क., *आत्मकथा,* खंड–2, (गुजराती संस्करण), पृ. 378
11. दत्त, धीरेन्द्र मोहन, पूर्वोक्त, पृ. 67–69, 1981 एवं दिवाकर, रंगनाथ, साहित्य मीमांसा, प्रथम संस्करण, 1949, पृ. 32 एवं शुक्ल रविशंकर, गाँधी ग्रंथमाला, खंड–10, 3 मार्च 1937 को गाँधी सेवा संघ सम्मेलन पर दिए गए भाषण से उद्धृत।
12. मशरूवाला, किशोरीलाल, गाँधी विचार दोहन पृ. 4,1969 एवं गाँधी मो. क., रचनात्मक कार्यक्रम, अनु. काशीनाथ त्रिवेदी, पृ. 9
13. पूर्व वही, गाँधी विचार दोहन, पृ. 9
14. सुमन, रामनाथ, *गाँधीवाद की रूपरेखा,* पंचम संस्करण, पृ. 189

15. गाँधी, मो.क., *आत्मकथा,* पृ. 231, 1984
16. *'हरिजन',* 23.7.38, पृ. 192
17. *'हरिजन',* 14.3.36 पृ. 36
18. मशरूवाला किशोरीलाल, *गाँधी विचार दोहन,* पृ. 10, 1969
19. पूर्व वही, पृ. 13
20. *मार्डन रिव्यू,* अक्टूबर 1935 में एन.के. बसु का लेख 'एन इन्टरव्यू विद महात्मा गाँधी'
21. *यंग इंडिया,* भाग–3, पृ. 976
22. दादा धर्माधिकारी, *गाँधी पुण्य स्मरण,* 1969, पृ. 27
23. दत्त, धीरेन्द्र मोहन, *पूर्वोक्त* 1981, पृ. 76
24. गाँधी मो.क., ग्राम स्वराज्य, संग्राहक–हरिप्रसाद व्यास, 1963, पृ. 63 एवं दत्त, धीरेन्द्र मोहन, महात्मा गाँधी का दर्शन, 1981, पृ. 79
25. *हरिजन,* 16.12.1939, पृ. 376
26. *हरिजन,* 1.6.1935, पृ. 125
27. गाँधी, मो.क., ग्राम स्वराज्य, पूर्वोक्त, पृ. 46–47, 1963 एवं गाँधी मो. क., रचनात्मक कार्यक्रम, पृ. 31–32, 1985
28. दत्त धीरेन्द्र मोहन, स्पीचेज ऑफ महात्मा गाँधी पृ. 275–280 एवं मेहता, बालू भाई, खादी मीमांसा, पृ. 187–188, 1940
29. *यंग इण्डिया,* भाग–3, पृ. 426–27
30. गाँधी, मो. क., *आत्मशुद्धि,* पृ. 55–56
31. दत्त धीरेन्द्र मोहन, *महात्मा गाँधी का दर्शन,* 1981, पृ. 33
32. *आत्म शुद्धि,* पूर्वोक्त
33. मशरूवाला कि.ध., गाँधी विचार दोहन, पृ. 41, 1968, 1969 एवं उपाध्याय, हरिभाऊ: बापूकथा, 1920–1948, पृ. 198, 1969 विद्यार्थी नरेन्द्र, अछूत कोई नहीं, पृ. 13 हिन्दी नव जीवन 26.12.1924 हरिजन सेवक 10 फरवरी, 1946

****